झुमुरा

अनंत कुमार मिश्र

प्रस्तावना

आज बदलते राजनीतिक, सामाजिक दृष्टिकोणों के बीच, अध्ययन की नवीन प्रवृत्तियों ने 'लोक' की महत्ता को स्वीकारा है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के प्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त' में 'लोक' शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है-

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्णो द्यौः समवर्त्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।

महावैयाकरण पाणिनि ने अपने ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में वेद से अलग लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है परंतु लोक में इसका स्वरूप अलग प्रकार का समझना चाहिए। (उपाध्याय, 1957)

आचार्य भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के चौदहवें अध्याय में नाटक के प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए 'नाट्यधर्मी' तथा 'लोकधर्मी' का उल्लेख किया है।

महर्षि व्यास ने लिखा है-

'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः'।

अर्थात् जो व्यक्ति 'लोक' को स्वतः अपने आँखों से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान सकता है।

प्रमुख शब्द- भरतमुनि, लोक, लोकनाट्य, महापुरुष शंकरदेव, अंकिया नाट, महापुरुष माधवदेव, झुमुरा

लोक, फोक, फोकलोर एवं लोकवार्ता

अंग्रेजी में 'लोक' के लिए फोक (folk) का इस्तेमाल होता है। फोक (folk) शब्द की उत्पत्ति एंग्लो सेक्शन शब्द Folc से हुई, जो जर्मनी में volk रूप में प्रचलित है।

'लोक- वार्ता' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'फोकलोर' का इस्तेमाल किया जाता है। सन् 1846 में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध पुरातत्ववेता विलियम जान थाम्स ने 'फोकलोर' शब्द का निर्माण किया। 'फोकलोर' दो शब्दों से मिलाकर बनाया है- 'फोक' तथा 'लोर'। यहाँ 'फोक' का अर्थ है 'असंस्कृत लोग' तथा 'लोर' का अर्थ है 'सीखा गया'। इस प्रकार 'फोकलोर' शब्द का अर्थ है- 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बंध में निश्चित मत उपलब्ध नहीं है। भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा-विद्वानों के मतों में 'लोक' शब्द को लेकर काफी मतभेद की स्थिति दिखाई पड़ती है। परंतु यह निर्विवाद रूप से स्वीकारा जाता है कि लोक साहित्य की परंपरा मनुष्य जाति के आदिम काल से जुड़ी हुई है। लोक-साहित्य, परम्परा को सहेज कर अनुभूति की संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति का सतत संवाहक रहा है।

हिंदी में 'फोक' शब्द के लिए 'ग्राम', 'जन' तथा 'लोक' शब्द पर्यायवाची के रूप में लिया जाता है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'फोक' के लिए ग्राम शब्द का आग्रह किया है। (त्रिपाठी) परंतु ग्राम शब्द में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि 'ग्राम' शब्द 'लोक' के भाव को संकुचित कर देता है। वास्तव में लोक का भाव ग्राम तथा नगर दोनों में समान रूप से विद्यमान है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द का हिंदी अनुवाद 'लोकवार्ता' बतलाया है। (सत्येन्द्र, 1949) इस शब्द में भी अव्याप्ति दोष है, क्योंकि 'लोकवार्ता'शब्द में अधिक से अधिक लोककथा या लोकचर्चा का भाव निहित है। संस्कृत कोश में 'लोकवार्ता' का अर्थ प्रवाद, अफवाह या किंवदंती दिया गया है। (शर्मा, 1957)

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार 'फोकलोर' के लिए 'लोकसंस्कृति' शब्द का प्रयोग अधिक उचित है। लोकसंस्कृति के अंतर्गत जीवन के आचार विचार, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, अनुष्ठान आदि सभी आते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' शब्द का व्यापक अर्थ में परिभाषित करते हैं। 'लोक' के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि " 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारित को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।" (द्विवेदी)

हमारी सांस्कृतिक बोध का एक बड़ा हिस्सा लोकसंस्कृति से संबद्ध है। हमारे रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, पर्व-त्यौहार आदि के साथ-साथ संगीत, नृत्य, चित्रकला, साहित्य आदि सृजनात्मक विधाओं में भी 'लोक' का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

नाटक एवं लोकनाट्य

नाटक की बात की जाए तो, जैसा कि हमें ज्ञात है कि भारतीय नाटक का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भरत मुनि का ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' नाट्यविद्या का मूल स्रोत है।

इसके अतिरिक्त धनन्जयकृत 'दशरूपक', विश्वनाथकृत 'साहित्य दर्पण', आदि भी नाट्यविद्या सम्बंधित सामग्री उपलब्ध है। आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को पँचम् वेद की संज्ञा दी गई। नाटक वर्ग-वर्ण से ऊपर विभिन्न प्रकार के रुचि रखने वाले मनुष्यों के मनोरंजन का साधन है-

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।"

संस्कृत साहित्य और नाटक के स्वर्ण युग के बाद इस देश में लंबे समय तक एक पांथिक मान्यता वाला शासन रहा। इन शासकों की प्रवृत्ति साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक आदि से द्वेषभाव से युक्त रही है। वे इन कलाओं को नष्ट करने में ही अपनी वीरता समझते थे। (उपाध्याय, 1957) कारण यह था कि नाटक लीला-भाव है। लीला यानि ईश्वर जैसा अपने को प्रस्तुत करना, जो इन पांथिक मान्यता को स्वीकार नहीं था। फलतः इस दौर में नाटक रचना, रंगमंच का घोर ह्रास हुआ। ऐसे विषम परिस्थितियों में नाटक थोड़ा बहुत बचा रहा, जिसमें लोक नाट्य का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इन हजार वर्षों में हमारा रंगमंच अलग-अलग क्षेत्रों, भाषाओं, बोलियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लोकानुरंजन के माध्यम के रूप में जीवित रहा।

सामान्यतः यह माना जाता है कि संस्कृत नाटक के ह्रास के बाद दशवीं शताब्दी के आस-पास लोकनाट्य का अस्तित्व उभरता दिखाई देता है और संस्कृत नाटक का स्थान लोकनाट्य लेता है। परन्तु भरत मुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में इस बात का संकेत दिया है कि लोकनाट्य का अस्तित्व उनसे पूर्व भी रहा था।

नेमिचन्द्र जैन का मानना है कि "पारम्परिक नाट्य इस देश की रंग-परम्परा की एक मूलभूत कड़ी है और विभिन्न प्रकार से मध्यकालीन नाट्य-रूपों में प्रवाहित होने वाली संस्कृत नाट्य-परम्परा का ही वर्तमान रूप है।" (जैन, 1993)

डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी अपनी पुस्तक 'भारतीय लोकनाट्य' की भूमिका में लिखते हैं कि लोक संस्कृति के भीतर लोक संवेदना, लोक विश्वासों के साथ-साथ जनाकांक्षा और जनसंघर्ष के मूल्य अनुभव समाहित और परिष्कृत होते चलते हैं। इस दृष्टि से लोकगाथा, लोककला और लोकनाट्य आदि से इसकी गहरी अभिन्नता है। (त्रिपाठी ड. व., 2001)

भक्ति आंदोलन भारतीय समाज को लगभग हर क्षेत्र में दशा- दिशा तय कर रही थी। लोकनाटक भी इससे अछूता नहीं रहा। इस कालखंड के संतों, भक्तों, आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय, मत, धर्म आदि के प्रचार-प्रसार के लिए नाटक जैसी कलात्मक अभिव्यक्ति को माध्यम बनाया। उनकी स्मृति में यह बात थी कि नाटक एक ऐसा प्रयोग है जो दृश्य तथा श्रव्य होने के कारण, विस्तार की दृष्टि से समाज के हर वर्ग- शिक्षित, अशिक्षित, पर अपना प्रभाव छोड़ता है। भक्तिकालीन नाटककारों ने भागवत के दशम स्कंध की कथा, जिसमें भगवान् कृष्ण का जीवनचरित वर्णित है, को अपने रचना का आधार बनाया। अभिनय के माध्यम

से जनता के सामने कृष्ण लीलाओं का सजीव रूप में प्रस्तुत किया। यह प्रदर्शन मंदिरों, मठों, सत्रों तथा अन्य स्थानों पर होने लगा, जिसे देखने के लिए श्रद्धालु जनता की भीड़ जुटने लगी।

इस प्रकार इन नाटकों के प्रयोग से दोहरी सफलता मिली एक तो धर्म के माध्यम से लोगों का परिष्कार हुआ दूसरा संस्कृत नाट्य परम्परा का कुछ अंश लोकनाट्य के माध्यम से बच सका।

डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी ने लोकनाट्य के दो भेद को माना है पहला लौकिक दूसरा धार्मिक। (त्रिपाठी ड. व., 2001) लौकिक नाट्य से उनका आशय लोकगाथाओं आदि से है। जिसके अंतर्गत उन्होंने ख्याल, लावनी, माच तमाशा, भवई, नौटंकी को रखा है।

आगे उन्होंने धार्मिक लोकनाट्य के दो भाग किये, पहला धार्मिक लीला रूप, जिसके अंतर्गत रामलीला एवं रासलीला को रखा। दूसरा धार्मिक एवं मंदिर आधारित लोकनाट्य, 'अंकिया नाट' इसी वर्ग के लोकनाट्य हैं।

झुमुरा की पूर्वपीठिका : अंकिया नाट

'अंकिया नाट' असम का जनप्रिय लोकनाट्य रूप है, जिसका प्रवर्तन वैष्णव सन्त श्रीमंत शंकरदेव ने किया। शंकरदेव के समय में असम क्षेत्र राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक तीनों दृष्टि से पूर्णतः अशान्ति, अमर्यादित, निराशावादिता के साथ-साथ अनेकों अमानवीय व्यवहारों का क्षेत्र बना हुआ था। गुरु महेंद्र कंदलि के छत्रछाया में अपनी आरंभिक शिक्षा पूर्ण करके श्रीमंत शंकरदेव 1481ई. में अपने प्रथम तीर्थाटन पर निकलते हैं। इस यात्रा में उन्होंने भारतवर्ष के तत्कालीन ज्ञान, धर्म के लगभग सभी क्षेत्रों जैसे गया, वाराणसी, प्रयाग, गोकुल, वृंदावन, मिथिला, अयोध्या, द्वारका, बद्रिकाश्रम, रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी आदि तीर्थों का भ्रमण किया। इस यात्रा में उन्होंने देश के सुदीर्घ सांस्कृतिक सातत्यता का अनुभव किया। उनका भारतबोध इसी यात्राबोध से निकला है, जिसका दर्शन हमें उनके रचनाओं में, ख़ास कर नाटकों में दिखाई पड़ता है।

डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी लिखते हैं कि, "अपनी वैष्णव भक्ति को जनता की मुक्ति चिंता का व्यापक आयाम देकर उन्होंने इसे एक ऐसे जनांदोलन का रूप दिया, जिसमें भाषा, कला और संस्कृति के पुनर्निर्माण की चिंता भी शामिल थी।" (त्रिपाठी ड. व., 2001)

श्रीमंत शंकरदेव ने अंकिया नाट परम्परा के माध्यम से अपने लोक जागरण अभियान के कार्यों को भी आगे बढ़ाया। उनका मुख्य लक्ष्य कृष्ण महात्म्य का प्रचार कर जनता के हृदय में आध्यात्मिक चेतना का संचार करना था। भक्ति के द्वारा समाज सुधार की संकल्पना के साथ श्रीमंत शंकरदेव अपनी पूरी जीवन यात्रा को जीते हैं।

रंगशाला और अभिनय की जिस शैली का प्रवर्तन शंकरदेव ने किया वह न्यूनाधिक रूप में असम की लोकरंजक विधाओं, मिथिला, बंगला, ब्रज, उड़ीसा और केरल की विभिन्न रंगशैलियों के आधार पर विकसित हुआ था। (भारती, 2004) शंकरदेव संस्कृत रंगमंच, बंगाल की जात्रा, बिहार की कीर्त्तनियाँ आदि के साथ असम के 'ओजापालि' जैसे प्राचीन नृत्य परम्परा का उपयोग करते हुए एक नए नाट्यविधा 'अंकिया नाट' का प्रवर्तन किया।

श्रीमंत शंकरदेव ने असम में कई नामघरों की स्थापना की। ये नामघर 'सत्र' संस्था से जुड़े होते थे। सत्र, वस्तुतः श्रीमंत शंकरदेव के 'एकशरणीया मत' के प्रचार-प्रसार की एक संगठित संस्था है। यह केवल धार्मिक संस्था मात्र नहीं, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था की संवाहक भी है। इसी 'सत्र' संस्था में प्रार्थना घर अथवा 'नामघर' बनाया जाता है, जहाँ अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक आयोजन किये जाते हैं। 'अंकिया' की प्रस्तुति इन नामघरों के ही मध्यस्थल को 'रंगस्थली' के रूप में निर्धारित करके की जाती है। नामघर के एक ओर 'मणिकूट' होता है जिस पर 'श्रीमद्भागवत' रखा जाता है। इसके विपरीत ठीक सामने संगीत मण्डली बैठती है इसके अतिरिक्त अंकिया की प्रस्तुति 'भाओनामघर' में भी की जाती है। यहाँ 'मणिकूट' का स्थान 'भाओना घर' की शेष भूमि से थोड़ा ऊँची होती है, जिस पर श्रीमद्भागवत ग्रंथ को रखा जाता है। भाओनामघर एक विशाल आयताकार मण्डप की तरह होता है। जिसकी लम्बाई तथा चौड़ाई क्रमशः 100 गज तथा 20 गज की होती है। यह चारों ओर से खुला तथा ऊपर से ढँका होता है। इसे सजाने के लिए मुखौटा, वस्त्र आदि का प्रयोग किया जाता है। जहाँ श्रीमद्भागवत गीता रखी जाती है, उसके ठीक सामने गायकों- वादकों का समूह बैठता है, जिसे 'दोहार' कहते हैं। इसी दोहार और रँगस्थल के बायीं ओर से अभिनेताओं और अन्य पत्रों का प्रवेश द्वार बना होता है। मंच पर पात्रों का प्रवेश 'दोहार' के बायीं ओर से होता है, परन्तु जब कभी मंच पर विमान, रथ आदि को लाया जाता है तब इन वस्तुओं का प्रवेश मणिकूट के दायीं ओर से करवाया जाता है।

इसी द्वार से एक रास्ता पीछे 'छघर' को जाता है। 'छघर' या 'शंऊ घर' एक सज्जा घर है, जहाँ अभिनेता आदि की साज-सज्जा की जाती है। स्थान परिवर्तन के लिए चौकियों की व्यवस्था रहती है।

अभिनेतागण 'दोहार' के बायीं ओर से प्रवेश करते हैं। दर्शकगण रंगस्थली के दोनों ओर बैठते हैं। इन सभी व्यवस्था में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि संगीत मण्डली, अभिनेताओं का मुख 'मणिकूट' की ओर हो।

प्रकाश की व्यवस्था के लिए कदली स्तम्भ, जिसे 'गाछ' कहा जाता है, में मिट्टी के दीपक को जलाकर किया जाता है। रंगमंच पर पात्रों का प्रवेश 'आड़- कापड़' के माध्यम से करवाया जाता है। इस पट्टी का प्रयोग सामान्यतः अन्य लोकनाट्यों में दिखाई पड़ता है। यह पट्टी नाट्यशास्त्र में पूर्वरंग विधि में प्रयोग होने वाली यवनिका है, जिसकी आड़ से 'प्रत्याहार' आदि की क्रियायें की जाती हैं। यह सामान्यतः सफेद रंग का होता है। पात्रों के प्रवेश के समय इसे दोनों छोर से दो व्यक्ति हाथ से पकड़ कर खड़े हो जाते हैं।

झुमुरा

अंकिया के दो रूप माने जाते हैं। पहला, वह जो इस शैली में बड़े नाटकों की रचना होती है, जिसे 'अंकिया नाट' कहते हैं।

दूसरा वह जो अंकिया का संक्षिप्त रूप है, जिसे 'झुमुरा' कहा गया है। इस नाट्य रूप की रचना श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य महापुरुष माधवदेव ने किया। 'झुमुरा' के अंतर्गत महापुरुष माधवदेव ने बालकृष्ण को बड़े ही मनोरम रूपों में प्रस्तुत किया है। झुमुरा की विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण के बालरूपों का वर्णन हुआ ही है साथ ही भगवान् और भक्तों के बीच एक माधुर्य सम्बन्ध अभिव्यक्त हुआ है। झुमुरा में कृष्ण सम्बंधित प्रचलित कथाओं को विषय बना कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है, जो लौकिक और माधुर्यसंपन्न प्रतीत होता है।

झुमुरा नाट्य में पात्रोचित वेशभूषा तैयार की जाती है। सूत्रधार सफेद वस्त्र पहनते हैं तथा कमर से नीचे एक घेरादार वस्त्र होता है जिसे 'घूरी' कहा जाता है।

श्रीकृष्ण का वस्त्र लाल होता है तथा कमर के नीचे वे पीताम्बर धारण करते हैं। उनके सिर पर मुकुट, मोर पंख होता है साथ ही देह में विभिन्न आभूषण पहनते हैं।

झुमुरा का प्रदर्शन 'अंकिया नाट' से थोड़ा अलग और विशिष्ट ढंग से होता है। विशेष अवसर पर झुमुरा का प्रदर्शन अपराह्न से सायं तक होता है तथा इसके बाद पूरी रात्रि अंकिया नाट की प्रस्तुति होती है।

सामान्यतः झुमुरा का प्रदर्शन संक्षिप्त होता है। संक्षिप्त होने के बावजूद 'झुमुरा' बेहद संयोजित और प्रभावकारी होता है। नृत्य- संगीत का संयोजन इस पूरे नाट्य पद्धति को विशिष्ट बना देता है।

नाट्यशास्त्र में निर्देशित पूर्वरंग का अनुकरण 'झुमुरा' में भी दिखाई पड़ता है। सबसे पहले दोहार पर मुख्यगायक तथा मुख्यवादक आकर अपना स्थान लेते हैं। पूर्वरंग क्रिया का आरम्भ संस्कृत श्लोक के साथ भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के वंदन से किया जाता है। तत्पश्चात तेज नगाड़ा, मृदंग बजा कर गायन-बायन मण्डली रंगस्थल पर आते हैं। ये श्वेत धोती-कुर्ता तथा श्वेत पगड़ी पहने हुए होते हैं। बायनों के गले से ढ़ोल लटकी होता है, जिसे 'खोल' कहा जाता है। ये दल खोल, झाल, मृदंग के धुन पर नृत्य करते हुए रंगस्थल पर आते हैं। ये दल मणिकूट की ओर मुख रखते हुए विशेष तालबद्धता के साथ खोल बजाते हैं, साथ ही अनेक तरह के कौशलपूर्ण नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। पूर्वरंग की इस प्रक्रिया को 'धेमाली' कहा जाता है।

धेमाली के बाद आड़-कापड़ से सूत्रधार का प्रवेश होता है। सूत्रधार का प्रवेश गायन-बायनों के सुंदर संगीतात्मक लय के साथ नृत्य करते हुए होता है। वे दोहार पर बैठे गायक के द्वारा दिए जाने वाले ताल पर नृत्य प्रस्तुत करता है। साथ ही वह गायन-बायन दल द्वारा किये गए नान्दीपाठ और भाटिमाओं को अपने हस्ताभिनय द्वारा अर्थ देता है। हरि बोल-हरि बोल का उद्घोष होता है। सूत्रधार प्रेक्षकों को भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन सुनते हुए उनके आगमन की सूचना देता है।

इस सूचना के साथ ही तेज नगाड़ा, खोल, झाल इत्यादि वाद्ययंत्र के तेज आवाज के साथ 'आड़-कापड़' से श्रीकृष्ण का गोप तथा गोपीजन के साथ प्रवेश होता है। श्रीकृष्ण, रंगस्थल पर प्रवेश करते हैं तथा अपने सखा-सखी समेत नृत्य करते हैं। यह नृत्य गायन- बादन दल के मुख्य गायक के द्वार प्रस्तुत की जाने वाली गीत के ताल, लय, संगीत के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य के उपरांत सभी अपना स्थान ग्रहण करते हैं।

'धेमाली' के उपरांत मूल नाटक प्रस्तुत किया जाता है। सूत्रधार नाटक के विषय से दर्शकवर्ग को अवगत कराता है। नाटक के पूरे प्रदर्शन में नृत्य-गीत की प्रधानता रहती है। नाटक प्रस्तुति के दौरान दृश्य परिवर्तन या अन्य किसी भी प्रकार की सूचना सूत्रधार रंगस्थल पर आकर देता है। इस दौरान जो भी पात्र रंगस्थल पर अभिनय कर रहे होते हैं, वह उसी मुद्रा में स्तब्ध हो जाता है, जिस मुद्रा में तत्काल नाटक प्रदर्शित हो रहा होता है। सूत्रधार की सूचना जब खत्म हो जाती है तब पुनः नाट्यकर्म को आगे बढ़ाते हैं।

प्रस्तुति के उपरांत अंत में भगवान् श्रीकृष्ण की विनती की जाती है। कृष्ण महिमा का वर्णन होता है। कृष्ण नाम जाप का फल बताया जाता है। सूत्रधार के द्वारा सन्देश दिया जाता है कि जो कृष्ण के इन लीला चरित्रों को श्रद्धापूर्वक सुनेगा, देखेगा तथा अभिनय करेगा, उन सभी व्यक्तियों को भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होगी। मृत्योपरांत उन्हें श्रीकृष्ण के चरणों में स्थान प्राप्त होगा। साथ ही मुक्ति मंगल गान के द्वारा सभी के लिए शांति और सुख की कामना की जाती है।

निष्कर्ष

यद्यपि झुमुरा की प्रस्तुति संक्षिप्त है तथापि वह सुगठित, संयोजित तथा प्रभावकारी होता है। नृत्य-संगीत का अन्तप्रवाह इसे विशिष्ट बना देता है। महापुरुष माधवदेव ने अपनी इस नाट्यविधा के द्वारा कृष्ण के बाल लीलाओं की अद्भुत छवियाँ प्रस्तुत की हैं। डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी लिखते हैं कि इसके द्वारा न केवल असम की जातीय निजता सुरक्षित है, अपितु उसका समस्त भारतीय जातीय विधाओं से ज्यादा सार्थक संवाद भी बना हुआ है। (त्रिपाठी ड. व., 2001)

महापुरुष माधवदेव ने इन नाटकों की रचना, मनोरंजन के साथ असमिया जाति के लोगों को भारत की धार्मिक भावबोध के साथ एकात्मकता स्थापित करने के लिए किया है। शंकरदेव, माधवदेव के द्वारा 15-16वीं शताब्दी में किये गए इन प्रयासों का ही परिणाम है कि इतने सारे षड्यन्त्रों के बावजूद इन क्षेत्रों के लोगों में भारत भाव बचा हुआ है। भारत और भारतीयता के प्रति अपार श्रद्धा, प्रेम है। तमाम राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के बाद भी पूर्वोत्तर के लोग भारत भाव को जीते हैं। इन सबमें असमिया नाट्यविधा 'अंकिया नाट', 'झुमुरा' आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंकिया नाट्यशैली आज भी असमिया जनमानस के बीच लोकप्रिय है।

संदर्भ सूचीः

1. सिद्धांत कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1989, पृ. 417

2. ऋग्वेद 3/90/24

3. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1957, पृ. 11

4. गीता, 3/3

5. जनपद पत्रिका, रामनरेश त्रिपाठी, खंड 1, पृ. 5-16

6. ब्रज-लोक- साहित्य का अध्ययन, प्रकरण 1

7. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वारका प्रसाद शर्मा

8. जनपद पत्रिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वर्ष 1, अंक 1, पृ. 65

9. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत मुनि, प्रथम अंक

10. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन इलाहाबाद द्वितीय संस्कण, 1957, पृ. 178

11. रंग दर्शन, नेमिचन्द्र जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1982

12. भारतीय लोकनाट्य, डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2001, पृ. 11

13. वही, पृ. 10

14. वही, पृ. 54

15. असम का पारम्परिक नाट्य अंकिया नाट, ओमप्रकाश भारती नटरंग, भारतीय रंगमंच का त्रिमासिक पत्रिका, मार्च 2004, खण्ड 18, अंक 72,

16. भारतीय लोकनाट्य, डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2001, पृ. 64

ग्रंथ सूचीः

नटरंग (2004)।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, (दि.न.), जनपद, 65।

ओमप्रकाश भारती, (2004)। असम का पारम्परिक नाट्य : अंकिया नाट, नटरंग।

कृष्णदेव उपाध्याय, (1957), लोक साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद : साहित्य भवन।

डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी, (2001), भारतीय लोकनाट्य, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।

द्वारकाप्रसाद शर्मा, (1957), संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, इलाहाबाद : रामनारायणबेनी प्रसाद प्रकाशक।

नेमिचंद्र जैन, (1993), रंग दर्शन, नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन।

रामनरेश त्रिपाठी, (दि.न.), जनपद, 5-16।

सत्येन्द्र, (1949), ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, आगरा : साहित्य रत्न भंडार।

अनंत कुमार मिश्र

सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,

लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली